इन्द्रियार्थेषु भूतेषु शरीरेषु च स प्रभुः। नानात्वं विनियोगं च धातैव व्यसृजत्स्वयम् ॥६२॥
नाम रूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम्। वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥६३॥
ऋषीणां नामधेयानि यथा वेदश्रुतानि वै। तथा नियोगयोग्यानि ह्यन्येषामपि सोऽकरोत् ॥६४॥
यथर्तुष्वृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये। दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥६५॥
करोत्येवंविधां सृष्टिं कल्पादौ स पुनः पुनः। सिसृक्षाशक्तियुक्तोऽसौ सृज्यशक्तिप्रचोदितः ॥६६॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

छठा अध्याय

श्रीमैत्रेय उवाच

अर्वाक्स्त्रोतास्तु कथितो भवता यस्तु मानुषः। ब्रह्मन्विस्तरतो ब्रूहि ब्रह्मा तमसृजद्यथा ॥१॥
यथा च वर्णानसृजद्यद्गुणांश्च प्रजापतिः। यच्च तेषां स्मृतं कर्म विप्रादीनां तदुच्यताम् ॥२॥

श्रीपराशर उवाच

सत्याभिध्यायिनः पूर्वं सिसृक्षोर्ब्रह्मणो जगत्। अजायन्त द्विजश्रेष्ठ सत्त्वोद्रिक्ता मुखात्प्रजाः ॥३॥
वक्षसो रजसोद्रिक्तास्तथा वै ब्रह्मणोऽभवन्। रजसा तमसा चैव समुद्रिक्तास्तथोरुतः ॥४॥

अंहिसा, मृदुता, कठोरता, धर्म-अर्धम, सत्य, मिथ्या ये सब उन्हें प्राप्त हो जाते हैं ॥६१॥ इस तरह प्रभु ब्रह्माजी ने ही इन्द्रियों के विषयभूत तथा शरीर में विभिन्नता तथा विनियोग की रचना स्वयं की है ॥६२॥ ब्रह्माजी ने स्वयं कल्प के प्रारम्भ में देवता आदि जीवों के नाम तथा रूप का तथा उनके कर्मो का विस्तार वेदवाक्यानुसार किया है॥६३॥ ऋषियों तथा अन्य प्राणियों के भी वेदानुसार नाम यथा योग्य उनके कर्मों का निर्देश स्वयं ब्रह्माजी ने ही किया है॥६४॥ जिस तरह भिन्न-भिन्न ऋतुओं के बार-बार आने पर भी उनके चिह्न, नाम तथा रूप पहले के ही जैसा रहते हैं; उसी तरह युग के आदि में भी उनके भाव पहले के ही जैसे देखे जाते हैं ॥६५॥ सृष्टि करने की इच्छा से युक्त ब्रह्माजी, कल्प के प्रारम्भ में बारम्बार जीवों की कर्मशक्ति से प्रेरित होकर इस प्रकार की सृष्टि करते हैं ॥६६॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के पाञ्चवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

चातुर्वर्ण्य व्यवस्था, दुर्ग-पुर-खर्वट-ग्रामादि पृथिवी के विभाग, अन्नों की उत्पत्ति तथा यश में बाधा करने वाले को तामिस्त्र आदि नरकों की प्राप्ति का वर्णन

श्रीमैत्रेय महर्षि ने कहा— आपने अर्वाक् स्त्रोत मनुष्यों का जो वर्णन किया है हे ब्रह्मन् ! जिस तरह से ब्रह्माजी ने उनकी सृष्टि की उसे आप मुझे विस्तार पूर्वक सुनाइये ॥१॥ प्रजापति ब्रह्माजी ने जैसे वर्णों की सृष्टि की तथा उनके जिन गुणों की सृष्टि की। विप्र आदि (वर्णों के) जो कर्म बतलाये गये हैं, आप उसे हमें सुनाइये ॥२॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठ ! जगत् की सृष्टि करने की इच्छा वाले सत्यसङ्कल्प ब्रह्माजी के मुख से सत्त्वगुण प्रधान प्रजा उत्पन्न हुयी ॥३॥ उसके पश्चात् उनके वक्षःस्थल से रजोगुण प्रधान प्रजा उत्पन्न हुयी। उनके

पद्भ्यामन्याः प्रजा ब्रह्मा ससर्ज द्विजसत्तम । तमः प्रधानास्ताः सर्वाश्चातुर्वर्ण्यमिदं ततः ॥५॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम । पादोरुवक्षःस्थलतो मुखतश्च समुद्गताः ॥६॥
यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद् ब्रह्मा चकार वै । चातुर्वर्ण्यं महाभाग यज्ञसाधनमुत्तमम् ॥७॥
यज्ञैराप्यायिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण वै प्रजाः । आप्याययन्ते धर्मज्ञ यज्ञाः कल्याणहेतवः ॥८॥
निष्पाद्यन्ते नरैस्तैस्तु स्वधर्माभिरतैस्सदा । विशुद्धाचरणोपेतैः सद्भिः सन्मार्गगामिभिः ॥९॥
स्वर्गापवर्गौ मानुष्यात्प्राप्नुवन्ति नरा मुने । यच्चाभिरुचितं स्थानं तद्यान्ति मनुजा द्विज ॥१०॥
प्रजास्ता ब्रह्मणा सृष्टाश्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थिताः । सम्यक्छ्रद्धासमाचारप्रवणा मुनिसत्तम ॥११॥
यथेच्छावासनिरताः सर्वबाधाविवर्जिताः । शुद्धान्तः करणाः शुद्धाः कर्मानुष्ठाननिर्मलाः ॥१२॥
शुद्धे च तासां मनसि शुद्धेऽन्तः संस्थिते हरौ । शुद्धज्ञानं प्रपश्यन्ति विष्ण्वाख्यं येन तत्पदम् ॥१३॥
ततः कालात्मको योऽसौ स चांशः कथितो हरेः । स पातयत्यघं घोरमल्पमल्पाल्पसारवत् ॥१४॥
अधर्मबीजसमुद्भूतं तमोलोभसमुद्भवम् । प्रजासु तासु मैत्रेय रागादिकमसाधकम् ॥१५॥
ततः सा सहजा सिद्धिस्तासां नातीव जायते । रसोल्लासादयश्चान्याः सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति याः ॥१६॥

ऊरू भाग से रजोगुण एवं तमोगुण मिश्रित प्रजा उत्पन्न हुयी ॥४॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! ब्रह्माजी ने अपने दोनों पैरों से दूसरे प्रकार की प्रजा की सृष्टि की, वे सारी प्रजाएँ तमोगुण प्रधान थीं । इस तरह यह जगत् चारो वर्णों वाला हो गया ॥५॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ब्रह्माजी के क्रमशः मुख, वक्षःस्थल, ऊरू तथा पैरों से उत्पन्न हुए॥६॥ हे महाभाग ! यज्ञानुष्ठान के ही लिए ब्रह्माजी ने यज्ञ के उत्तम साधन स्वरूप इन चारो वर्णों की सृष्टि की॥७॥ हे धर्मज्ञ मैत्रेय ! यज्ञानुष्ठान से तृप्त होकर देवता वर्षा करके प्रजाओं को तृप्त करते हैं । इसतरह यज्ञ प्रजाओं का कल्याण करने वाले हैं ॥८॥ जो मनुष्य अपने वर्ण एवं आश्रमानुकूल धर्मों का पालन करने में रत (संलग्न) रहते हैं, विशुद्ध आचार का पालन करने वाले तथा सन्मार्गगमी होते हैं वे ही लोग यज्ञ का अनुष्ठान कर पाते हैं ॥९॥ हे मुने ! लोग इस मानव शरीर से स्वर्ग तथा अपवर्ग (मोक्ष) को प्राप्त कर सकते हैं तथा अपनी रुचि के अनुसार तत्-तत् लोकों को प्राप्त कर सकते हैं ॥१०॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! ब्रह्माजी द्वारा रची गयी वह प्रजा चातुर्वर्ण्य में व्यवस्थित तथा शुद्ध आचरण का अच्छी तरह से पालन करने वाली थी ॥११॥ वह अपनी इच्छा के अनुसार निवास करने वाली, सभी प्रकार की बाधाओं से रहित, शुद्ध अन्तःकरण वाली, शुद्ध तथा (नित्य नैमित्तिकादि) कर्मों का अनुष्ठान करने के कारण निर्मल थी ॥१२॥ कर्मानुष्ठान करने के कारण शुद्ध मन रूपी शुद्ध अन्तःकरण में श्रीहरि के स्थित रहने पर, वे शुद्ध ज्ञान वाले थे, जिससे विष्णु नामक परम पद की प्राप्ति होती है ॥१३॥ उसके पश्चात् त्रेतायुग के आने पर, जिसका वर्णन मैंने पहले किया है, वह श्रीहरि का काल नामक अंश मनुष्यों में उस पाप को प्रवृत्त कर देता है जो अत्यल्प सुख प्रदान करने वाला होता है ॥१४॥ हे मैत्रेय ! उससे प्रजाओं में अज्ञान तथा लोभ को उत्पन्न करने वाले, पुरुषार्थ के असाधक, राग आदि अधर्म का बीज उत्पन्न हो जाता है ॥१५॥ उसके कारण मनुष्यों में जो रसोल्लास आदि स्वाभाविक सिद्धियाँ (स्वभाविक ज्ञान) हैं वे नहीं होती हैं । सिद्धियों की संख्या आठ है ॥१६॥ उन सिद्धियों के पूर्ण रूप से क्षीण हो जाने पर तथा पापों के बढ़ते रहने से प्रजाएँ द्वन्द्व (कलह),

---

रसस्य स्वत एवान्तरुल्लासः स्यात्कृते युगे । रसोल्लासाख्यिका सिद्धिस्तया हन्ति क्षुधं नरः ॥
स्त्र्यादीनां नैरपेक्ष्येण सदा तृप्ता प्रजास्तथा । द्वितीया सिद्धिरुद्दिष्टा सा तुप्तिर्मुनिसत्तमैः ॥
धर्मोत्तमश्च योऽस्त्यासां सा तृतीयाऽभिधीयते । चतुर्थी तुल्यता तासामायुषः सुखरूपयोः ॥

तासु क्षीणास्वशेषासु वर्द्धमाने च पातके। द्वन्द्वाभिभवदुःखार्तास्ता भवन्ति ततः प्रजाः ॥१७॥
ततो दुर्गाणि ताश्चक्रुर्धान्वं पार्वतमौदकम्। कृत्रिमं च तथा दुर्गं पुरखर्वटकादिकम् ॥१८॥
गृहाणि च यथान्यायं तेषु चक्रुः परादिषु। शीतातपादिबाधानां प्रशमाय महामते ॥१९॥
प्रतीकारमिमं कृत्वा शीतादेस्ताः प्रजाः पुनः। वार्तोपायं ततश्चक्रुर्हस्तसिद्धिं च कर्मजाम् ॥२०॥
व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमाश्चाणवस्तिलाः। प्रियङ्गवो ह्युदाराश्च कोरदूषाः सतीनकाः ॥२१॥
माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः सकुलत्थकाः। आढक्यश्चणकाश्चैव शणाः सप्तदश स्मृताः ॥२२॥
इत्येता ओषधीनां तु ग्राम्यानां जातयो मुने। ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥२३॥
व्रीहयस्सयवा माषा गोधूमाश्चाणवस्तिलाः। प्रियङ्गुसप्तमा ह्येते अष्टमास्तु कुलत्थकाः ॥२४॥
श्यामाकास्त्वथ नीवारा जर्तिलाः सगवेधुकाः। तथा वेणुयवाः प्रोक्तास्तथा मर्कटका मुने ॥२५॥
ग्राम्यारण्याः स्मृता ह्येता ओषध्यस्तु चतुर्दश। यज्ञनिष्पत्तये यज्ञस्तथासां हेतुरुत्तमः ॥२६॥
एताश्च सह यज्ञेन प्रजानां कारणं परम्। परावरविदः प्राज्ञास्ततो यज्ञान्वितन्वते ॥२७॥
अहन्यहन्यनुष्ठानं यज्ञानां मुनिसत्तम। उपकारकरं पुंसां क्रियमाणाघशान्तिदम् ॥२८॥
येषां तु कालसृष्टोऽसौ पापबिन्दुर्महामुने। चेतःसु ववृधे चक्रुस्ते न यज्ञेषु मानसम् ॥२९॥

अभिभव तथा दुःख से आर्त हो गयी हैं ॥१७॥ उसके पश्चात् प्रजाओं ने मरुभूमि, पर्वत तथा जल आदि के स्वाभाविक दुर्ग (किला) पुर (नगर) और खर्वट आदि स्थापित किए ॥१८॥ हे महामते मैत्रेय ! उन नगरों में शीत तथा आतप (धूप) आदि की बाधाओं से बचने के लिए प्रजाओं ने यथायोग्य गृह बनाया ॥१९॥ इस तरह शीत आदि बाधाओं से बचने का उपाय करने के पश्चात् प्रजाओं ने जीविका के साधनभूत कृषि तथा हस्तशिल्प इत्यादि की रचना की ॥२०॥ धान, यव, गेहूँ छोटे धान, तिल, काँगनी (प्रियङ्गु) ज्वार, कोदो, छोटी मटर, उड़द, मूङ्ग, मसूर, बड़ीमटर, कुलथी, राई, चना और सन ये सत्रह ग्राम्य अन्नों की जातियाँ हैं। इसीतरह ग्राम्य तथा वन्य (वन में होने वाले) अन्नों को मिलाकर चौदह याज्ञिक अन्नों की जातियाँ है ॥२१-२३॥ याज्ञिक अन्नों के नाम हैं— धान, यव, उड़द, गेहूँ, छोटे धान, तिल, कङ्गनी तथा कुलथी ये आठ तथा सावाँ, नीवार, वन तिल, गवेधु, वेणुयव, और मक्का ॥२४-२५॥ ग्राम्य तथा वन्य मिलाकर चौदह अन्न यज्ञ की सामग्री हैं। यज्ञ इन सबों की उत्पत्ति के कारण हैं ॥२६॥ इन सबों के साथ यज्ञ प्रजाओं की समृद्धि का परम कारण है। इसीलिए परावर तत्त्व के ज्ञाता महापुरुष यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं ॥२७॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! प्रतिदिन किया जाने वाला यज्ञ मनुष्यों का उपकार करने वाला तथा किए गये पापों को शान्त करने वाला है ॥२८॥ हे महामुने ! जिन लोगों के अन्तःकरण में काल के द्वारा सृष्ट पाप बढ़ जाता है, उन्हीं लोगों की यज्ञों के करने में प्रवृत्ति नहीं होती है ॥२९॥ उन यज्ञों के विरोधियों ने वैदिक

ऐकान्त्यबलबाहुल्यं विशोका नाम पञ्चमी। परमात्मपरत्वेन तपोध्यानादिनिष्ठिता ॥
षष्ठी च कामचारित्वं सप्तमी सिद्धिरुच्यते। अष्टमी च तथा प्रोक्ता यत्रक्वचनशायिता ॥

अर्थ— सत्ययुग में रस का स्वयं ही उल्लास होता था। यही 'रसोल्लास' नाम की सिद्धि है, उसके प्रभाव से मनुष्य भूख को नष्ट कर देता है। उस समय प्रजा स्त्री आदि भोगों की अपेक्षा के बिना ही सदा तृप्त रहती थी; इसी को मुनिश्रेष्ठ ने 'तृप्ति' नामक दूसरी सिद्धि कहा है। उनका जो 'उत्तम धर्म' था वही उनकी तीसरी सिद्धि कही जाती है। उस समय सम्पूर्ण प्रजा के रूप और आयु एक से थे, यही उनकी चौथी सिद्धि थी। बल की ऐकान्तिकी अधिकता— यह 'विशोका' नाम की पाँचवीं सिद्धि है। परमात्मपरायण रहते हुए तप-ध्यानादि में तत्पर रहना छठी सिद्धि है। स्वेच्छानुसार विचरना सातवीं सिद्धि कही जाती है तथा जहाँ-तहाँ मन की मौज में पड़ें रहना आठवी सिद्धि कही गयी है।

वेदवादांस्तथा वेदान्यज्ञकर्मादिकं च यत्। तत्सर्वं निन्दयामासुर्यज्ञव्यासेधकारिणः ॥३०॥
प्रवृत्तिमार्गव्युच्छित्तिकारिणो वेदनिन्दकाः। दुरात्मानो दुराचारा बभूवुः कुटिलाशयाः॥३१॥
संसिद्धायां तु वार्तायां प्रजाः सृष्ट्वा प्रजापतिः । मर्यादां स्थापयामास यथास्थानं यथागुणम्॥३२॥
वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान्धर्मभृतां वर। लोकांश्च सर्ववर्णानां सम्यग्धर्मानुपालिनाम्॥३३॥
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम्। स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वनिवर्तिनाम्॥३४॥
वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्तिनाम् । गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचर्यानुवर्तिनाम्॥३५॥
अष्टाशीतिहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्। स्मृतं तेषां तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ॥३६॥
सप्तर्षीणां तु यत्स्थानं स्मृतं तद्वै वनौकसाम्। प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मसंज्ञितम्॥३७॥
योगिनाममृतं स्थानं स्वात्मसन्तोषकारिणाम् ॥३८॥
एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनो योगिनश्च ये। तेषां तु परमं स्थानं यत्तत्पश्यन्ति सूरयः॥३९॥
गत्वा गत्वा निवर्त्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः। अद्यापि न निवर्त्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥४०॥
तामिस्त्रमन्धतामिस्त्रं महारौरवरौरवौ। असिपत्रवनं घोरं कालसूत्रमवीचिकम्॥४१॥
विनिन्दकानां वेदस्य यज्ञव्याघातकारिणाम्। स्थानमेतत्समाख्यातं स्वधर्मत्यागिनश्च ये॥४२॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

मत, वेद तथा यज्ञादि कर्म सबों की निन्दा की है ॥३०॥ वे लोग प्रवृत्ति मार्ग को विनष्ट करने वाले, वेद की निन्दा करने वाले, दुरात्मा, दुराचारी तथा कुटिल आशय वाले ही थे ॥३१॥ हे धर्म करने वालों में श्रेष्ठ मैत्रेय ! प्रजाओं की जीविका की व्याख्या हो जाने के पश्चात् ब्रह्माजी ने सृष्ट प्रजाओं के गुण तथा स्थान के अनुसार मर्यादा की स्थापना की ॥३२॥ हे धर्म का पालन करने वाले श्रेष्ठ मैत्रेय ! वर्णों एवं आश्रमों के धर्म तथा सभी वर्णों के धर्मों का अच्छी तरह से पालन करने वाले लोकों (मनुष्यों) की स्थापना की ॥३३॥ अपने धर्म का पालन करने वाले कर्मनिष्ठ ब्राह्मणों का स्थान पितृलोक है, सङ्ग्राम में कभी पीठ नहीं दिखाने वाले क्षत्रियों का स्थान इन्द्रलोक है ॥३४॥ अपने धर्म का पालन करने वाले वैश्यों का स्थान वायुलोक है, स्वेतर समस्त वर्णों की सेवा करने वाले शूद्रों का स्थान गान्धर्व लोक है ॥३५॥ अट्ठासी हजार ऊर्ध्वरेता महर्षियों का जो स्थान बतलाया गया है, वही स्थान गुरुकुलवासी ब्रह्मचारियों का है ॥३६॥ इसी तरह वनवासियों का स्थान सप्तर्षिलोक, गृहस्थों का पितृलोक तथा संन्यासियों का स्थान ब्रह्मलोक बतलाया गया है ॥३७॥ आत्मानुभव से ही तृप्त रहने वाले योगियों का स्थान मोक्ष है ॥३८॥ एकान्त में रहकर निरन्तर ब्रह्म का ध्यान करने वाले योगियों का जो स्थान है, उसका साक्षात्कार तो सूरिजन ही किया करते है ॥३९॥ सूर्य तथा चन्द्रमा आदि ग्रह अपने-अपने लोकों में जाकर लौट आते हैं, किन्तु जो द्वादशाक्षर मन्त्र का चिन्तन करने वाले हैं वे इस लोक में पुनः नहीं आते हैं ॥४०॥ वेदों की निन्दा करने वाले, यज्ञ में बाधा पहुँचाने वाले, तथा अपने वर्णाश्रम धर्म का परित्याग करने वालों के लिए तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, असिपत्रवन, भयङ्कर कालसूत्र तथा अविचीक आदि जो नरक हैं, वे स्थान बतलाये गये हैं ॥४२॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

सातवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसाः प्रजाः। तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्यैस्तैः करणैः सह।
क्षेत्रज्ञाः समवर्त्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः ॥१॥
ते सर्वे समवर्त्तन्त ये मया प्रागुदाहृताः। देवाद्याः स्थावरान्ताश्च त्रैगुण्यविषये स्थिताः ॥२॥
एवंभूतानि सृष्टानि चराणि स्थावराणि च ॥३॥
यदास्य ताः प्रजाः सर्वा न व्यवर्धन्त धीमतः। अथान्यान्मानसान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत् ॥४॥
भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथा। मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसान् ॥५॥
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥६॥
ख्यातिं भूतिं च सम्भूतिं क्षमां प्रीतिं तथैव च। सन्नतिं च तथैवोर्ज्जामनसूयां तथैव च ॥७॥
प्रसूतिं च ततः सृष्ट्वा ददौ तेषां महात्मनाम्। पत्न्यो भवध्वमित्युक्त्वा तेषामेव तु दत्तवान् ॥८॥
सनन्दनादयो ये च पूर्वसृष्टास्तु वेधसा। न ते लोकेष्वसज्जन्त निरपेक्षाः प्रजासु ते ॥९॥
सर्वे तेऽभ्यागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः। तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ महात्मनः ॥१०॥
ब्रह्मणोऽभून्महान् क्रोधस्त्रैलोक्यदहनक्षमः। तस्य क्रोधात्समुद्भूतज्वालामालातिदीपितम्।
ब्रह्मणोऽभूत्तदा सर्वं त्रैलोक्यमखिलं मुने ॥११॥
भ्रकुटीकुटीलात्तस्य ललाटात्क्रोधदीपितात्। समुत्पन्नस्तदा रुद्रो मध्याह्नार्कसमप्रभः ॥१२॥
अर्धनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिशरीवान्। विभजात्मानमित्युक्त्वा तं ब्रह्मान्तर्दधे ततः ॥१३॥

मरीचि आदि प्रजापतियों, तामसिक सर्ग, स्वायम्भुव मनु एवं शतरूपा तथा उनकी सन्तानों का वर्णन

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— उसके पश्चात् ब्रह्माजी के ध्यान करने पर उनके शरीर से, शरीर तथा इन्द्रियों के साथ मानस प्रजाएँ उत्पन्न हुयीं ॥१॥ जिनका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ वे सभी देवता से लेकर स्थावर पर्यन्त जीव जो त्रिगुणात्मक चर एवं अचर जीव थे उसी प्रकार उत्पन्न हुए ॥२-३॥ बुद्धिमान् प्रजापति की ये प्रजाएँ जब नहीं बढ़ी तो उन्होंने अपने ही सदृश भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, अत्रि, दक्ष तथा वसिष्ठ इन नव मानस पुत्रों की अपने शरीर से ही सृष्टि की। पुराणों में इन मानस पुत्रों को नव ब्रह्मा कहा गया है ॥४-६॥ इसके पश्चात् ख्याति, भूति, सम्भूति, क्षमा, प्रीति, सन्नति, ऊर्जा, अनसूया तथा प्रसूति इन नव कन्याओं की सृष्टि करके, उन्हें, 'तुम इनकी पत्नी बन जाओ' ऐसा कहकर उन महर्षियों को सौंप दिया ॥७-८॥ ब्रह्माजी ने पहले जिस सनन्दन आदि की सृष्टि की थी वे सन्तान निरापेक्ष थे; अतएव वे संसार तथा सन्तान में नहीं प्रवृत्त हुए ॥९॥ वे सभी ज्ञान सम्पन्न, विरक्त, मत्सरादि दोषों से रहित थे। उन सबों के इस तरह से निरपेक्ष तथा लोकसृष्टि पराङ्मुख देखकर महात्मा ब्रह्माजी को, त्रैलोक्य को भस्म कर देने में समर्थ क्रोध उत्पन्न हुआ, उनके उस क्रोध से त्रैलोक्य ज्वाला समूह से जलने लगा ॥१०-११॥ उस समय उनकी टेढ़ी भृकुटी एवं क्रोध से सन्तप्त ललाट से रुद्र की उत्पत्ति हुयी। वे दोपहर के सूर्य के समान कान्ति वाले थे ॥१२॥ उन रुद्र का शरीर आधा नर का और आधा नारी का था। उनका शरीर अत्यन्त भयङ्कर था। उनको 'तुम अपने शरीर का विभाग करो' इस तरह से कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये ॥१३॥ इस तरह से कहने पर रुद्र ने अपने शरीर को पुरुष तथा स्त्री इन दो भागों में विभक्त कर दिया। उसके